

हिंदी नाटकों में स्त्री अस्मिता का प्रश्न



राज भारद्वाज
एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
भगिनी निवेदिता कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली



अशोक कुमार मीणा
असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
शिवाजी कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली

सारांश

समकालीन संदर्भों में नारी-अस्मिता से जुड़े प्रश्न सर्वाधिक प्रासंगिक रूप में सामने आए हैं। प्राचीन काल में गार्गी, मैत्रेयी जैसी विदुषी नारियाँ अपनी ज्ञान-मीमांसा का लोहा मनवाती दिखायी पड़ती हैं। किन्तु मध्यकाल तक आते-आते स्त्री अंधकारमय रूढ़ियों एवं परम्पराओं में कैद हो गई। मुस्लिम आक्रमणकारियों के भय और अत्याचार ने भारतीय नारी को इस दुर्दशा तक पहुँचाने में सक्रिय भूमिका निभायी। आधुनिक काल के प्रारम्भ में महात्मा ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले, राजा राममोहन राय, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि विद्वानों ने अपने नवजागरणवादी चिंतन के हवाले से नारी की स्थिति पर विचार किया और उसकी शिक्षा, विवाह, सामाजिक स्थिति इत्यादि के क्षेत्र में व्यापक चिंतन किया। लेकिन आर्थिक व राजनीतिक बदलाव स्वतंत्रता के बाद आना शुरू हुआ। शिक्षा ने नारी के भीतर के आत्मसम्मान व अपने अस्तित्व की खोज को जाग्रत किया। अस्मिता की खोज में लगी नारी ने आर्थिक जगत में उतर कर अपनी पहचान बनाई। इस तरह आर्थिक मजबूती ने न केवल नारी की सामाजिक व पारिवारिक भूमिका को प्रभावित किया बल्कि इन भूमिकाओं को उसने नए सिरे से परिभाषित भी किया। रचनाकारों ने साहित्य की सभी विधाओं में स्त्री के जीवन की समस्याओं को तरजीह दी। खुद महिला रचनाकारों ने भी कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि सभी विधाओं में अपनी लेखनी चलायी और एक निजी पहचान बनाई।

मुख्य शब्द: नाटक, महिला रचनाकार, नारी-अस्मिता।

प्रस्तावना

‘नाटक’ साहित्य की अन्य विधाओं से भिन्न विधा है। नाटक की सार्थकता सामूहिक लेखन से नहीं, बल्कि रंगमंच पर सफलतापूर्वक प्रस्तुत होकर अपनी कलात्मकता को साबित करने में है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले महिला रचनाकारों की उपस्थिति बहुत कम मिलती है और जो मिलती है वह भी पुरुष नाटककारों द्वारा उनको अपनी रचना में स्थान देने में है। इस तरह नाट्य-साहित्य और नाट्य रचना दोनों में महिलाएँ हाशिए पर रही हैं। हिन्दी रंगमंच और नाटक के क्षेत्र में स्त्री की भूमिका को लेकर प्रसिद्ध महिला रंगकर्मी मोना झा का कहना है कि “रंगमंच पर एक तो स्त्रियों को लेकर नाटक लिखे ही नहीं जा रहे हैं दूसरा जैसे और जगहों पर स्त्री-विमर्श हो रहा है वैसा विमर्श रंग जगत में हो इसके लिए रंगमंच अभी तैयार ही नहीं है। आसाम, बंगाल, उड़ीसा, कर्नाटक, केरल आदि क्षेत्रों की अपेक्षा हिन्दी क्षेत्रों के रंगमंच में स्त्रियों की उपस्थिति और जुड़ाव बहुत कम है। इसके दो कारण हो सकते हैं। पहला, समाज का सामंती नजरिया और दूसरा हमारे रोज के जीवन में नाटक का नहीं शामिल होना।”¹ महिला कलाकारों की रंगमंच के क्षेत्र में निराशाजनक स्थिति के बारे में आगे उनका कहना है कि “यद्यपि स्त्रियों में वैचारिक क्रान्ति आई है और वे पुरुष के समान ही कई क्षेत्रों में बेहतर योगदान कर रही हैं। फिर भी अभी समाज का स्वरूप ऐसा नहीं बन पाया है कि रंगमंच में पुरुष के बराबर स्त्रियों का आना हो सके।”² लेकिन आज हम देख रहे हैं कि अभिनय, रंगकर्म और नाट्य रचना के क्षेत्र में महिलाएँ अपनी उपस्थिति दर्ज कराकर अपना योगदान प्रस्तुत कर रही हैं।

हिन्दी साहित्य में नाटक का प्रारम्भ भारतेन्दु युग से माना जाता है। भारतेन्दु के समय समाज में नारी की दशा दयनीय थी, ऐसे में भारतेन्दु ने ‘नीलदेवी’ नाटक के माध्यम से नारी स्वतंत्रता का चित्रण प्रस्तुत किया। नीलदेवी उन राजपूत नारियों की तरह नहीं है जो विपत्ति के समय हाथ पर हाथ रखकर अकर्मण्य बनी रहें और पुरुषों के पराजित होने पर खुद को जौहर ज्वाला में भस्म कर लें। नीलदेवी अपने पति सूर्यदेव के बलिदान का बदला लेकर जाति की स्वतंत्रता और अबलाओं के धर्म को बचाती है। इस तरह

भारतेन्दु ने 'नीलदेवी' नाटक में नीलदेवी के माध्यम से धर्मनीति और राजनीति के समन्वय पर बल देते हुए स्त्री की परम्परागत छवि को बदलने का प्रयास किया है।

नवजागरणवादी विद्वानों ने स्वतंत्रता आंदोलन के समय विभिन्न धार्मिक व सामाजिक बुराईयों को खत्म करने के साथ नारी स्वातंत्र्य के प्रश्न को भी उठाया। इसी संदर्भ में जयदेवा तनेजा ने लिखा है कि "राष्ट्रीय स्वतंत्रता के मद्देनजर भारत में सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों ने महिलाओं को सक्षम बनाया जिससे कि वे समाज और राष्ट्र निर्माण में अधिक सक्रिय और सार्थक भूमिका निभा सकें। इसने साहित्य और नाटक में महिलाओं के चित्रण में कुछ बुनियादी बदलाव के लिए नेतृत्व किया।"³ लेकिन इनका सामाजिक सुधार आन्दोलन बाल विवाह, बेमेल विवाह व सती प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों तक ही सीमित था। इसी समय 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक के माध्यम से जयशंकर प्रसाद ने स्त्री की स्वाधीनता, शोषण से मुक्ति, नारी अस्मिता एवं पहचान से जुड़े अहम् प्रश्नों को उठाया। प्रसाद इस नाटक में स्त्री की खोई हुई अस्मिता और गरिमा को पुनः प्रतिष्ठित करने का प्रयास करते हैं। प्रो. रमेश गौतम ने लिखा है कि "समाज के स्वस्थ विकास की कामना के साथ, नारी अस्मिता, नारी-पहचान, नारी-स्वातंत्र्य से जुड़े जटिल एवं ज्वलंत प्रश्नों को प्रसाद जी ने समसामयिक संदर्भों के अनुरूप ध्रुवस्वामिनी नाटक में रूपायित किया है।"⁴ ध्रुवस्वामिनी नाटक पुरुष के शोषण चक्र से नारी स्वातंत्र्य के उद्घोष में आधुनिक चेतना का पर्याय है। यही आधुनिक चेतना ध्रुवस्वामिनी के इन विद्रोही शब्दों में सामने आती है - "मैं केवल यही कहना चाहती हूँ कि पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु-संपत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है। वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, तो मुझे बेच भी नहीं सकते हो।"⁵ इस तरह पहली बार इस नाटक में नारी (ध्रुवस्वामिनी) अपने अस्तित्व व अस्मिता के प्रति सचेत दिखाई देती है। सदियों से पुरुष-प्रधान समाज में कैद भारतीय नारी की मुक्ति का स्वर ध्रुवस्वामिनी के आक्रोश में नारी की स्वतंत्र अस्मिता के रूप में व्यक्त होता है। वह अपने पति रामगुप्त द्वारा दुकराकर उपहार स्वरूप शकराज को दिए जाने पर विद्रोही रूप में कहती है - ध्रुवस्वामिनी : (खड़ी होकर रोष से) निर्लज्ज! मद्यप!! क्लीव!!! ओह, तो मेरा कोई रक्षक नहीं? (ठहरकर) नहीं, मैं अपनी रक्षा स्वयं करूँगी। मैं उपहार देने की वस्तु शीतलमणि नहीं हूँ।"⁶ इस तरह ध्रुवस्वामिनी के ये शब्द नारी मुक्ति व उसके अस्तित्व की स्वतंत्र प्रतिष्ठा करते हैं।

स्वतंत्रता आन्दोलन के दौर में साहित्यकारों ने युगीन समस्याओं के साथ नारी स्वातंत्र्य, अस्मिता और विकास को ठोस धरातल प्रदान किया। लेकिन यह युग नारी की अस्मिता संबंधी विचारधारा या प्रश्न को उठाने का काल नहीं था। फिर भी हिन्दी नाट्य-साहित्य में नारी अस्मिता की दृष्टि से एक शुरुआत कही जा सकती है।

स्वातन्त्र्योत्तर युग में आर्थिक बदलाव सामाजिक परिवर्तन का मुख्य कारण बना। शिक्षा और आर्थिक

स्वतंत्रता ने नारी को एक नवीन चेतना दी। उसमें अपनी अस्मिता व अस्तित्व के प्रति जागृति आई। वह पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने में गौरव का अनुभव करने लगी। अब पुरुष उसके लिए देवता नहीं रहा और पति परमेश्वर ना होकर 'लाइफ पार्टनर' बन गया। 'लाइफ पार्टनर' शब्द में पति-पत्नी दोनों की सहभागिता दिखाई पड़ती है। आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता की ओर नारी के बढ़ते कदम पुरुष को स्वीकार्य नहीं हुए फलस्वरूप दाम्पत्य जीवन में टकराव की स्थिति उत्पन्न हुई। नाटककारों ने स्त्री-पुरुष के बदलते संबंधों को अपने नाटकों का विषय बनाया। मणि मधुकर का 'दुलारीबाई' नाटक समाज के पुराने संस्कारों, अंधविश्वासों एवं रुढ़ियों पर करारी चोट करता है। बदलती सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में नारी के 'चयन के अधिकार' के प्रश्न को इस नाटक में उठाया गया है। साथ ही यह नाटक नारी के विवाह-दाम्पत्य जीवन को लेकर रुढ़ मान्यताओं का भंडाफोड़ करता है, जिसमें नारी को केवल सतही और दिखावे की स्वतंत्रता दी गई है।

महिला नाटककारों में अग्रणी मृदुला गर्ग का नाटक 'एक और अनजबी' बदलते सामाजिक-आर्थिक सन्दर्भों में नारी की अस्मिता के प्रश्न को एक नया आयाम देता है। नाटक में स्त्री पात्र शानी एक तरफ प्रेमी द्वारा उपेक्षित है तो दूसरी तरफ अपनी पदोन्नति के लिए पति द्वारा उसको कंपनी के मैनेजर के सामने दाँव पर लगा दिया जाता है। पुरुष समाज के लिए स्त्री मात्र अपनी महत्वाकांक्षाओं व शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति का साधन रही है। इस नाटक में दो पुरुषों के बीच विभाजित एक नारी (शानी) की त्रासदी को व्यक्त किया है जो अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रही है। मृदुला गर्ग का यह नाटक पति-पत्नी के संबंधों के माध्यम से पुरुष सत्ता को सवालों के कटघरे में खड़ा करता है। मोहन राकेश का प्रयोगधर्मी नाटक 'आधे-अधूरे' मध्यवर्गीय स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की विडम्बना, विषमता और त्रासदी का विवेचन करता है। शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक प्रताड़ना को सहती सावित्री कहती है - "यहाँ सब लोग समझते क्या हैं मुझे? एक मशीन, जो कि सबके लिए आटा-पीसकर रात को दिन और दिन को रात करती रहती है?"⁷ इस तरह एक स्त्री (सावित्री) आर्थिक दबाव के चलते पारिवारिक संबंधों के बीच अपने अस्तित्व व अस्मिता को खोजती नजर आती है। सुरेन्द्र वर्मा का नाटक 'सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक' नपुंसक पति ओक्काक और उसकी पत्नी शीलवती की कहानी को अत्यन्त ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करता है। राज्य के उत्तराधिकारी के लिए शीलवती को नियोग प्रथा के तहत एक रात के लिए प्रतोष के पास भेजा जाता है। शीलवती को प्रतोष के साथ रात बिताने के बाद पहली बार स्त्री-पुरुष संबंधों की पहचान होती है और वह नपुंसक पति ओक्काक को अस्वीकार कर देती है। नाट्य जगत में प्रसाद की ध्रुवस्वामिनी के बाद सुरेन्द्र वर्मा की शीलवती ही ऐसी स्त्री पात्र है जो पुरुष वर्चस्व के विरुद्ध 'अस्वीकार का साहस' करती है।

'साँच कहूँ तो ...' नाटक के माध्यम से प्रभाकर

क्षौत्रिय ने भारतीय समाज में सदियों से चली आ रही बेमेल विवाह की समस्या को उठाया है। बारह वर्षीय राजमती का विवाह चालीस वर्षीय वीसलदेव से होता है। वीसलदेव राजमती को छोड़कर चला जाता है। दस वर्षों के अपमान, दलन और उत्पीड़न के खिलाफ राजमती वीसलदेव को लताड़ती हुई कहती है – “अरे कनावड़े राजा – तेरे पीछे सात पग क्या चल ली कि तूने मेरा रूप और यौवन ही धूल कर दिया। मेरा गरब और गुमान, मेरे प्राण और मेरे गान सब सोख लिए।”⁸ इस तरह यह नाटक बेमेल और बाल विवाह के प्रश्नों के साथ-साथ नारी अस्मिता और अस्मत् के सवाल को नये रूप में उठाता है। साथ ही वर्तमान समय में परिवार में नारी सशक्तिकरण पर नई दृष्टि से सोचने के लिए बाध्य करता है।

मन्नू भंडारी का नाटक 'बिना दीवारों के घर' अजीत और शोभा के माध्यम से ऐसे आधुनिक दम्पति की समस्या को प्रस्तुत करता है जो एक-दूसरे के स्वतंत्र व्यक्तित्व को सहन नहीं कर पाते हैं। दरअसल पुरुष प्रधान समाज में पुरुष स्त्री को अपनी निजी सम्पत्ति समझता है और उसे वह अपने विचारों के अनुसार ढालना चाहता है। परिणामस्वरूप पति-पत्नी में टकराव होता है और वे एक ही घर में अजनबी बन जाते हैं। नाटक में शोभा घर की चार दीवारी से बाहर निकल कर अपने व्यक्तित्व और अस्मिता को पहचानती है लेकिन घर-परिवार और पति से वह हार जाती है। असल में नारी जीवन की यह त्रासदी रही है कि उसके लिए पुरुष के साथ जीना जितना कठिन होता है उससे ज्यादा कठिन उसके बिना जीना होता है। यह नाटक घर-परिवार के भीतर और बाहर अपनी अस्मिता व अस्तित्व के लिए संघर्ष करती स्त्री की कहानी को रुपायित करता है।

'कन्धे पर बैठा था शाप' मीराकांत का यह नाटक महाकवि कालिदास और उनकी उपेक्षिता पत्नी विद्योत्तमा की कहानी प्रस्तुत करता है। नाटक में बताया है कि स्त्री चाहे वैदुष्य प्राप्त हो या गणिका हो वह हमेशा से ही उपेक्षित रही है। इसका अपराधी पुरुष वर्ग है क्योंकि स्त्री-पुरुष संबंधों में अधिकतर निर्णय एकपक्षीय होते हैं जिन्हें पुरुष लेता है। कालिदास अपनी पत्नी विद्योत्तमा को गुरु के रूप में स्वीकार करते हुए कहते हैं कि – “जिस स्त्री ने मेरे जीवन को कीर्ति के इस शिखर तक पहुँचाया ... उसे गुरु के अतिरिक्त किसी अन्य रूप में अंगीकार करना मेरे लिए पाप होगा।”⁹ इस तरह कालिदास विद्योत्तमा का पत्नी के रूप में परित्याग करके केवल गुरु के रूप में स्वीकार करता है। मीराकांत ने इतिहास की इस घटना को समकालीनता से जोड़ते हुए बताया है कि आज भी स्त्री कभी भोग की वस्तु समझकर त्याग दी जाती है तो कभी उसको देवी बनाकर प्रस्थापित कर दिया जाता है।

'कोमल गांधार' नाटक में शंकर शेष ने महाभारत के ऐतिहासिक प्रसंग के माध्यम से सदियों से शोषित-उत्पीड़ित नारी के रूप को उभारा है। राजनीतिक षड्यंत्रों के तहत गांधार और हस्तिनापुर का पुरुष वर्ग

गांधारी पर अपनी इच्छा थोप देता है। गांधारी अपनी व्यथा पर आक्रोश प्रकट करती हुई कहती है – “मेरी सहमति का कोई अर्थ नहीं है क्या? क्यों नकार दिया गया मेरे अस्तित्व को पूरी तरह? राजनीति इतनी क्रूर होती है क्या? ... राजरक्त से जन्मे एक शरीर से ज्यादा कुछ नहीं समझा गया मुझे। क्यों?”¹⁰ गांधारी के ये प्रश्न सम्पूर्ण स्त्री समुदाय के प्रश्न हैं जो उसकी सार्थकता और उसके व्यक्तित्व की अर्थवत्ता से जुड़े हुए हैं। “कोमल गांधार का नाटकीय संवेदन पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्री की उत्पीड़ित नियति, स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की टकराव, व्यक्ति के आकांक्षा जगत, मानवीय सम्बन्धों में संक्रमण की तरह फैली राजनीति, मानवीय अहम्, घृणा और अनावस्था के परिवेश में विकसित कौरवों की 'नपुंसक अहंकार' जनित चेतना, मानसिकता आदि कई आयामों का संस्पर्श करता है।”¹¹ इस तरह 'कोमल गांधार' नारी पर अत्याचार करने की चिरन्तन प्राचीन परम्परा पर प्रहार करते हुए अनेक प्रश्न खड़े करता है और राजनीतिक हित के चलते नारी शोषण के मिथक को नये संदर्भों में उद्घाटित करता है। अपनी अस्मिता व अधिकारों के लिए पुरुष सत्ता को प्रश्नांकित करती गांधारी महाभारत युगीन नारी नहीं बल्कि आधुनिक नारी के रूप में हमारे सामने आती है।

'मैं नारी तुम पुरुष' नाटक में डॉ. अज्ञात ने स्वतंत्र भारत में नारी की यथार्थ स्थिति को दिखाने की कोशिश की है। आज समाज में स्त्री को पुरुषों के समान संवैधानिक अधिकार प्राप्त होने के बावजूद भी उसकी स्वतंत्रता का बलात्हरण हो रहा है। समाज व राजनीति में लोकसेवा व महिला मंगल का दम्भ भरने वाले व्यक्ति भी बलात्कार जैसी जघन्य वृत्ति से परिचालित है। इन अपराधियों के चंगुल से जब कोई व्यक्ति स्त्री को छुड़ा लेता है तो वह उन्हें आस्तीन का साँप नजर आता है। देवदास इस नाटक में भगवती को चरणदास के चंगुल से छुड़ा लेता है, तो चरणदास उसे आस्तीन का साँप कहता है। देवदास कहता है – “संचालक जी! मैं आस्तीन का साँप इसलिए हूँ कि मैंने आपके चंगुल से प्रवंचित और समाज द्वारा ठुकराई गई एक भद्र स्त्री की रक्षा की।”¹² इस तरह समाज में महिला संगठन व महिला मंगल के नाम पर हो रही दिखावे की लोकसेवा वास्तव में समाज सेवा नहीं, बल्कि इन अपराधियों के गुनाहों पर परदा डालने का एक इन्द्रजाल है। इसी परदे के पीछे ये महिलाओं का शारीरिक व मानसिक शोषण करते हैं।

'माधवी' नाटक में भीष्म साहनी ने स्त्री के प्रति पुरुष के व्यवहार को लेकर शोषण और दमन की परम्परा एवं सामन्तवादी मनोवृत्ति को यथार्थवादी शैली में प्रस्तुत किया है। 'माधवी' नाटक पौराणिक मिथक के माध्यम से हमें ठोस यथार्थ धरातल पर ले जाकर पूरी निर्ममता के साथ समाज में नारी जीवन की सच्चाईयों से साक्षात्कार कराता है। महलों में रानियों की यथार्थ स्थिति को बताते हुए माधवी मालव से कहती है – “जानते हो, जिन रानियों से राजा को सन्तान नहीं मिली, महल की दीवारों के पीछे उनकी क्या गति हुई है। उन्हें भोजन तक के लिए कोई नहीं पूछता था।”¹³ आज भी समाज और परिवार में नारी की यही स्थिति है। संतान नहीं होने पर

या तो उसे छोड़ दिया जाता है या फिर तरह-तरह की यातनाएँ दी जाती हैं। आज भी नारी परिवार में इस उत्पीड़न से उबर नहीं पाई है।

निष्कर्ष

इस तरह नवजागरण काल से लेकर समकालीन नाट्य-साहित्य तक में पुरुष व महिला नाटककारों द्वारा नारी अस्तित्व व अस्मिता से जुड़े अनेक प्रश्नों को उठाया गया है। जिनमें बाल विवाह, बेमेल विवाह, आत्म निर्णय की स्वतंत्रता, विधवा विवाह, आर्थिक स्वतंत्रता जैसे अनेक प्रश्न हैं, जिनके कारण स्त्री खुद को आज भी ऐसे मुहाने पर खड़ा पाती है जहाँ वह सबकुछ पाकर भी कुछ न पाने का दर्द झेल रही है। स्वतंत्र भारत के संविधान ने अवश्य नारी की चिंताजनक स्थिति को ध्यान में रखते हुए समानता, चुनाव आदि का अवसर दिया। किन्तु पारिवारिक स्तर पर और सामाजिक स्तर पर आज भी नारी अपनी सुरक्षा को लेकर, अपनी शिक्षा को लेकर, विवाह आदि में उसके निर्णय की भूमिका को लेकर अभी भी विकट समस्या से जूझ रही है। अनेक नाटककार आज की सामाजिक स्थितियों को ध्यान में रखते हुए अनेक नाट्य-रचनाएँ कर रहे हैं। नारीवादी आन्दोलनों ने भी नारी की चिंताजनक स्थिति की ओर समाज का ध्यान खींचा है, हालाँकि स्त्री से जुड़ी कई स्वयंसेवी संस्थाएँ तर्क से परे नारेबाजी में उलझी हुई हैं। फिर भी स्कूल-कॉलेजों में लड़कियों के बढ़ते कदम हरियाणा जैसे प्रदेश में बेटे बचाओ – बेटे पढ़ाओ जैसे आन्दोलन और लड़कियों का खेल जगत में नाम रोशन करना कुछ अच्छे सामाजिक बदलाव के संकेत हैं। आने वाले समय के नाटककार इन परिस्थितियों को और अधिक प्रभावशाली ढंग से अपनी रचनाओं में उभारेंगे ऐसा विश्वास है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. स्त्री विमर्श के लिए हिन्दी रंगमंच प्रस्तुत नहीं है – मोना झा से अभिषेक नंदन की बातचीत, रंगवार्ता सं. अश्विनी कुमार पंकज, नवंबर-जनवरी 2011-2012.
2. स्त्री विमर्श के लिए हिन्दी रंगमंच प्रस्तुत नहीं है – मोना झा से अभिषेक नंदन की बातचीत, रंगवार्ता सं. अश्विनी कुमार पंकज, नवंबर-जनवरी 2011-2012., पृ. 54.
3. हिन्दी नाटकों में स्त्री (लेख), जयदेव तनेजा, रंगवार्ता, अश्विनी कुमार पंकज, नवंबर-जनवरी 2011-2012, पृ. 59.
4. प्रसाद के नाटक: देश और काल की बहुआयामिता, डॉ. रमेश गौतम, ईशा ज्ञानदीप प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2001, पृ. 138.
5. ध्रुवस्वामिनी, जयशंकर प्रसाद, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2014, पृ. 33.
6. ध्रुवस्वामिनी, जयशंकर प्रसाद, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2014, पृ. 35.
7. आधे-अधूरे: मोहन राकेश, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, सं. 1989, पृ. 42.
8. साँच कहीं तो, प्रभाकर क्षौत्रिय, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1993, पृ. 87.
9. कन्धे पर बैठा था शाप (मीराकांत) भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, सं. 2006, पृ. 54.
10. कोमल गांधार, शंकर शेष, पराग प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1997, पृ. 36.
11. हिन्दी नाटक: मिथक और यथार्थ: रमेश गौतम, अभिरुचि प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1997, पृ. 581.
12. मैं नारी तुम पुरुष: डॉ. अज्ञात, समीर प्रकाशन, कानपुर, सं. 1983, पृ. 52.
13. माधवी: भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1984, पृ. 55.